© 2017 IJSRSET | Volume 3 | Issue 6 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099
Themed Section: Engineering and Technology

पातञ्जलयोग साधना के सोपान : एक अध्ययन

रामानन्द (शोधच्छात्र)
संस्कृत तथा प्राकृत भाषा–विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

विविध भारतीय दर्शनों के बीच योगदर्शन का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। लगभग ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी में भारतीय दर्शन के आकाश में एक जाज्वल्यमान नक्षत्र 'महर्षि पतञ्जलि' का उदय हुआ। विद्वानों का यह भी मत है कि पतञ्जलि शेषावतार थे जो त्रिविध दुःखों से पीड़ित मानव जाति के उद्धार के लिए एवं कैवल्य प्राप्ति के उपायों का प्रचार करने के लिये एक अर्ध्य देते हुए ऋषि की अञ्जलि में बालक रूप में प्रकट हुए थे। एक जनश्रुति के अनुसार अञ्जलि में गिरने के कारण ही इनका नाम पतञ्जलि पड़ा। जिन्होंने आदिकाल से चली आ रही मोक्ष प्रदायिनी योग विद्या को व्यवस्थित रूप देकर उसका प्रचार व प्रसार किया। भारतीय परम्परा में पतञ्जलि नाम के अनेक विद्वान् हो चुके हैं परन्तु कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि पाणिनि व्याकरण का महाभाष्य, आयुर्वेद की चरक संहिता और योगसूत्र एक ही पतञ्जलि द्वारा रचित हैं। जैसा कि कहा भी कहा है–

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि।।[प]

महर्षि पतञ्जलि ने योग विद्या का प्रारम्भ नहीं किया अपितु आदिकाल से गुरु शिष्य परम्परा से चली आ रही योग विद्या को जिसके बीज वेद, उपनिषद्, सूत्र, स्मृति, बौद्ध, जैन आदि ग्रन्थों में बिखरे हुए थे, उनको समेटकर अपनी योगसाधना एवं सुदृढ़ दार्शनिक चिन्तन के आधार पर एक अनुपम एवं अद्भुत ग्रन्थ 'योगसूत्र' की रचना की। योगसूत्र में महर्षि पतञ्जलि ने सूत्र शैली में विभिन्न योग साधनाओं का उल्लेख किया है।

योगदर्शन एक प्रायोगिक शास्त्र है। साधकों की योग्यता के अनुसार इसकी साधना को निम्नलिखित तीन सोपानों में बांटा जा सकता है–

(क) निम्नकोटि या क्रियायोग की साधना

अष्टाङ्गयोग की साधना का वर्णन करते समय महर्षि पतञ्जलि ने प्रथम सूत्र में ही क्रियायोग का वर्णन किया है। तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ही क्रियायोग कहलाता है।[पप] क्रियायोग अष्टाङ्गयोग के पूर्व की जाने वाली क्रिया है। इसका वर्णन निम्नलिखित है–

(i) तप–द्वन्द्वों को सहन करना तप कहलाता है।[पपप] यह शरीर, प्राण, इन्द्रियों तथा मन को उचित रीति से वश में करने की क्रिया है। इसके साधक भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी, हर्ष–शोक आदि विघ्नों की अवस्था में बिना विक्षेप के योग में प्रवृत्त हो सकता है। जिस प्रकार अग्नि में तापने से धातु का मल नष्ट हो जाता है तथा उसमें स्वच्छता और चमक आ जाती है उसी प्रकार तप की अग्नि में तमस् रूपी मल नष्ट हो जाता है, साधक द्वन्दों को सहन करने के योग्य हो जाता है। बिना तप के योग सिद्ध नहीं होता। इसका कारण यह है कि अनादि काल से कर्म, क्लेश और वासनाएँ चित्त में चित्रित रहती हैं जो विषयजाल को उठाने वाली हैं और बिना तप के ये सब नाश को प्राप्त नहीं होते हैं।[पअ] श्रीमद्भगवद्गीता में तप के कायिक, वाचिक और बौद्धिक तीन भेद माने गए हैं। भूख–प्यास, शीत–उष्ण आदि शारीरिक कष्टों को सहन करना शारीरिक तप है। वाणी पर अधिकार रखते हुए नपे–तुले वचन बोलना वाचिक तप है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, निन्दा, राग–द्वेष, संशय जन्य कुवृत्तियों का बुद्धि से सदा निवारण करते रहना, अपमान, हानि, निन्दा से भी बुद्धि का असन्तुलित न होना, वासनाओं आदि को हटाना बौद्धिक तप है। भावना की दृष्टि से भी तप के तीन प्रकार हैं–सात्त्विक तप, राजसिक तप तथा तामसिक तप।

(ii) स्वाध्याय–तप के अतिरिक्त साधक को स्वाध्याय का भी सेवन करना होता है। ओंकार आदि पवित्र करने वाले नामों को जप और मुक्ति प्रतिपादक शास्त्रों का अध्ययन करना स्वाध्याय कहा जाता है।[अ] मोक्षशास्त्रों में वेद, उपनिषद, गीता आदि ग्रन्थ आते हैं। सुविधानुसार भिन्न–भिन्न साधक विभिन्न तरीकों से स्वाध्याय करते हैं। कोई जप करता है तो कोई किसी अध्यात्म ग्रन्थ का अध्ययन करता है और कोई सत्सङ्ग करके स्वाध्याय की पूर्ति कर लेता है। स्वाध्याय से साधक का मन पवित्र होने लगता है। कैवल्य प्राप्ति के लिए साधक में जिज्ञासा होती है। स्वाध्याय करके फिर योग करे और पुनः स्वाध्याय करे। इस प्रकार करने से साधक मोक्ष की ओर अधिक अग्रसर होता है।

(iii) ईश्वरप्रणिधान–ईश्वर-प्रणिधान का अर्थ ईश्वर की विशेष भक्ति है। शरीर, इन्द्रिय, मन, प्राण, अन्तःकरण आदि सब बाह्य और आभ्यान्तर कारणों, उनसे होने वाले समस्त कर्मों और उनके फलों को अर्थात् सम्पूर्ण बाह्य और आभ्यान्तर जीवन को ईश्वर को समर्पण कर देना है। भोजवृत्ति के अनुसार सर्वक्रियाओं को फल की अपेक्षा से रहित उस परम गुरु को अर्पण करना ईश्वर प्रणिधान कहलाता है।[अप] ईश्वर-प्रणिधान भक्तियोग का महत्वपूर्ण अÁ है और श्रीमद्भगवद्गीता के कर्मयोग और श्री अरविन्द के पूर्णयोग का मूल सिद्धान्त है।

(ख). मध्यमकोटि या अष्टाङ्गयोग की साधना

अष्टाङ्गयोग मध्यम श्रेणी के अधिकारियों के लिए है जिसके यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये आठ अङ्ग हैं।[अपप] साधक क्रमबद्ध रूप से स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर साधनापथ पर बढ़ता जाता है। पातञ्जलयोग की यही साधना मुख्य है। इन अष्टाङ्गों की साधना करने से अशुद्धि के नाश होने पर विवेकख्याति पर्यन्त ज्ञान का प्रकाश बढ़ता है। साधना के इन अष्टाङ्ग का वर्णन निम्न है–

(i) यम

उपरमे धातु से यम शब्द की निष्पत्ति हुई है, जिसका अर्थ उपरम् अर्थात् अभाव है। स्वाभाविक हिंसा, मिथ्या, अस्तेय, मैथुन तथा परिग्रह का क्रमशः अभावरूप अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यम शब्द का अर्थ है। अधिक व्यापक रूप में यम का अभिप्राय ऐसा आत्म–अनुशासन है जिसके द्वारा मनुष्य के राजसिक अहंभाव और इसकी उत्तेजनाओं एवं कामनाओं को विजित तथा शान्त करके पूर्णरूप से मिटा दिया जाए। इसका उद्देश्य नैतिक शान्ति अर्थात् आवेश शून्य स्थिति को उत्पन्न करना है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यह राजसिक मनुष्य में अहंभाव के नाश के लिए प्रेरित करता है। पातञ्जलयोग के अनुसार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यम के भेद हैं।[अपपप]

सभी धर्मों में किसी न किसी रूप में अहिंसा का स्थान है। जैन धर्म के अनुसार तो अहिंसा ही परम धर्म है। अहिंसा का सामान्य अर्थ किसी प्राणी को न मारना है अर्थात् किसी भी प्राणी को कभी भी किसी तरह का कष्ट न देना अहिंसा है। शारीरिक, वाचिक और मानसिक अहिंसा के तीन भेद हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान व शब्द प्रमाण द्वारा वस्तु के यथार्थ रूप को मन में धारण करना, वाणी से कथन करना तथा उसी के अनुसार व्यवहार करना सत्य कहा जाता है। सामान्य रूप से अस्तेय का अर्थ चोरी न करना है। शास्त्राज्ञा के विरूद्ध दूसरे के पदार्थो का ग्रहण करना स्तेय है। इसका त्यागकर देना, उनकी इच्छा भी न करना अस्तेय है। काम विकार को किसी भी प्रकार से उदय न होने देना ब्रह्मचर्य है। धन सम्पत्ति आदि भोग की सामग्री को आवश्यकता से अधिक सञ्चय न करने को अपरिग्रह कहते हैं।

(ii) नियम

अष्टाङ्गयोग का दूसरा अङ्ग नियम है। नियम का अभिप्राय कुछ नियमित अनुष्ठानों के द्वारा मन को अनुशासन में लाना है। इसका उद्देश्य सात्त्विक शान्ति और पवित्रता को प्राप्त करना तथा एकाग्रता के लिए आधार बनाना। योगशास्त्र के अनुसार शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ये नियम के पाँच भेद हैं।[पग]

शौच का सीधा अर्थ है शुद्धि अर्थात् पवित्रता। सामर्थ्यानुसार परिश्रम करने पर जो फल प्राप्त होता है उसी में सन्तुष्ट रहना सन्तोष कहलाता है। द्वन्द्वों को सहन करना तप कहलाता है। ओंकार आदि पवित्र करने

वाले नामों का जप और मुक्ति प्रतिपादक शास्त्रों का अध्ययन करना स्वाध्याय कहा जाता है। ईश्वर प्रणिधान का तात्पर्य ईश्वर की विशेष भक्ति से है।

(iii) आसन

यम और नियम का पालन प्रत्येकक्षण किया जा सकता है परन्तु जिस अवस्था में शरीर बिना गति के स्थिरतापूर्वक तथा सुखपूर्वक रह सके, वहीं आसन है।[ग] अर्थात् बैठने की विशेष विधि का नाम आसन है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार मेरूदण्ड के ऊपर भार न देकर, गर्दन और सिर सीधा रखने की स्थिति में रहने का नाम आसन है। योग के कुछ आसन निम्न हैं जैसे–सिद्धासन, पद्मासन, वीरासन, सुखासन, बज्रासन आदि।

(iv) प्राणायाम

प्राण ही जीवन है। प्राण के बिना प्राणी जीवित नहीं रह सकता है। प्राणायाम का अर्थ है प्राणानाम् आयामः अर्थात् प्राणों का विस्तार, प्राणों पर नियन्त्रण, प्राणों को अपने वश में करना, प्राणों को इच्छानुसार छोड़ना और रोकना। पतञ्जलि ने श्वास तथा प्रश्वास की गति को रोकने को प्राणायाम कहा है।[गप] प्राणायाम के मुख्य रूप से तीन भेद हैं–पूरक, रेचक तथा कुम्भक।

(v) प्रत्याहार

प्रत्याहार का अर्थ है–विमुख होना, पीछे हटना, दूसरी दिशा में जाना, विषयों से विमुख होना। योग में प्रत्याहार का अर्थ है–इन्द्रियों का अपने बाह्य विषयों से हटाकर अन्दर की ओर ले जाना, अन्तर्मुख होना। जब चित्त की बाहरी विषयों की उपेक्षाकर अन्तर्मुखी प्रवृत्ति होती है, तब वह प्रत्याहार कहा जाता है। इन्द्रियाँ चित्त का अनुसरण करती हैं। जैसे–मधुमक्खी अपनी रानी का अनुसरण करती है। रानी जिधर जाती है, मधुमक्खियां भी उधर जाती हैं। इसी प्रकार इन्द्रियाँ भी चित्त का अनुसरण करती हैं। इन्द्रियों का अपने विचारों को त्यागकर चित्त स्वरूप के अनुकूल होना प्रत्याहार कहलाता है।[गपप]

(च) धारणा

चित्त वृत्ति का किसी देश में बांधना धारणा कहलाती है।[गपपप] धारणा में यह होता है कि एक वृत्ति कुछ देर ध्येय पर रूकने के बाद हट जाती है और अन्य वृत्तियां उठने लगती है। ऐसा होने पर फिर वृत्तियों को ध्येय पर लगाया जाता है। धीरे–धीरे अन्य वृत्तियों का उठना कम हो जाता है। धारण का देश वाह्य भी हो सकता है और आन्तरिक भी।

(vi) ध्यान

धारणा का अभ्यास दृढ़ होने पर साधक की ऐसी स्थिति हो जाती है कि वृत्तियों का प्रवाह बीच–बीच में नहीं टूटता है। धारणा की इस अवस्था को ध्यान कहते हैं। अतः जिस विषय में धारणा की गई हो उसी ध्येय

विषयक ज्ञान या वृत्तियों का समान प्रवाह ध्यान कहलाता है।[गपअ] समान प्रवाह का अभिप्राय यह है कि दूसरी वृत्ति बीच में न आए। जिस प्रकार से तेल की धारा गिरती है बीच–बीच में टूटती नहीं उसी प्रकार ध्यान में वृत्तियाँ ध्येय पर ही रहती है जब तक ध्यान करता है तब तक वृत्तियाँ ध्येय पर ही होती है। ध्यान का समय धीरे–धीरे बढ़ता जाता है तथा इनकी स्थिति भी उत्तमोत्तम होती जाती है।

(viii) समाधि

अभ्यास करते–करते साधक के ध्यान की प्रगाढ़ता बढ़ती जाती है जिसके परिणामस्वरूप धीरे–धीरे ऐसी अवस्था आने लगती है जिसमें कि साधक को स्वयं का तथा ध्यानरूपी क्रिया का भी बोध नहीं रहता बल्कि केवल ध्येयमात्र रह जाता है। अतः ध्यान में केवल ध्येयमात्र का रह जाना तथा अपना स्मरण भी योगी को न रहे, इस अवस्था को समाधि कहते हैं।[गअ]

इस इस प्रकार से यह अष्टाङ्गयोग जो मध्यम अधिकारियों के लिए है यम, नियम से आरम्भ होकर समाधि तक है। अष्टाङ्ग पथ क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म होता हुआ चित्त की निरूद्धावस्था को प्राप्त कराता है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर यह क्रम निम्न प्रकार से है–यम, नियम एक प्रकार से साधना के लिए अभ्यास है। वे आगे की साधना का आधार प्रदान करते हैं। शरीर पर आसन के द्वारा, प्राण पर प्राणायाम द्वारा, इन्द्रियों पर प्रत्याहार द्वारा तथा धारणा, ध्यान और समाधि द्वारा चित्त की वृत्तियों पर अधिकार किया जाता है जो क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म हैं। इनमें से पहले अङ्ग अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम व प्रत्याहार बाह्य साधन तथा धारणा, ध्यान और समाधि अन्तरङ्ग साधन कहलाते हैं।

(ग) उच्चकोटि या राजयोग की साधना

'राजत्वात्सर्वयोगानां राजयोग उदाहृतः' इस व्युत्पत्ति के आधार पर राजयोग को सर्वेश्रेष्ठ बताया गया है। उच्चकोटि की साधना उत्तम कोटि के अधिकारियों के लिए है। यहाँ प्रश्न उठता है कि उत्तम कोटि के अधिकारी कौन हैं? इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि उत्तम कोटि के अधिकारी वे हैं जिनका चित्त समाहित है। श्रीमद्भगवद्गीता में इनको योगरूढ़ के नाम से पुकारा जाता है। युञ्जान और आरुरूक्ष नाम भी इनके लिये आये हैं। इन साधकों ने पिछले जन्मों में साधना की है। एक प्रकार से इन्हें जन्मजात अभ्यासी कह सकते हैं। जहाँ तक की भूमि पूर्वजन्मों में इन्होंने प्राप्त कर ली है उससे आगे की भूमि के लिए इस जन्म में प्रयत्न करते हैं और पूर्वसाधना की रक्षा करते हैं। इस प्रकार समाहित चित्त वाले उत्तम कोटि के अधिकारियों के लिए उच्चकोटि की साधना का वर्णन निम्नलिखित है–

उत्तम कोटि के अधिकारियों के लिये अभ्यास तथा वैराग्य दो साधन हैं जिनके द्वारा ये चित्त की निरूद्धावस्था को प्राप्त करते हैं।

(i) अभ्यास

वृत्ति रहित चित्त का स्वरूप में स्थिर रहना परिणाम स्थिति कहलाती है उस स्थिति के लिए प्रयत्न करते रहने को अभ्यास कहते हैं।[गअप] जिसके लिए निम्न साधन हैं–चित्त की प्रसन्नता, प्राणायाम, विषयवती प्रवृत्ति, शोकरहित ज्योतिष्मयी प्रवृत्ति, राग रहित महापुरुषों के चित्त का आलम्बन, श्रद्धा, ईश्वरप्रणिधान। अभ्यास में अपार शक्ति है। अभ्यास करने से मनुष्य की प्रकृति के विरूद्ध कार्य भी अनुकूल हो जाते हैं। अभ्यास के द्वारा पशुओं से भी आश्चर्यजनक कार्य करा लिए जाते हैं। इसीलिए अभ्यास करने से साधक का चित्त भी स्थिरता को प्राप्त होता है।

(ii) वैराग्य

विषयभोगों और सुखों से बुद्धि में अनाशक्ति अथवा उदासीनता हो जाना वैराग्य कहलाता है। योगदर्शन के अनुसार वैराग्य दो प्रकार का है–अपरवैराग्य तथा परवैराग्य।

अपरवैराग्य विषय वैतृष्ण्य है। इससे बुद्धि में विषयों से विरक्ति जागृत होती है। विषय दो प्रकार के हैं–दृष्ट और आनुश्रविक। दृष्टविषय वे हैं जो देखे जा सकते हैं, जैसे–स्त्री, पुत्र, ऐश्वर्य आदि। आनुश्रविक विषय वे हैं जो देखे नहीं जाते बल्कि सुने जाते हैं, जैसे–बैकुण्ठ, स्वर्गादि। इन दोनों प्रकार के विषयों अर्थात् दृष्ट और आनुश्रविक विषयों से विरक्ति हो जाना वशीकार नाम वाला वैराग्य है।[गअपप]

अपरवैराग्य के पश्चात् परवैराग्य सिद्ध होता है। अपरवैराग्य की चरमसीमा पर पहुँचकर साधक को विवेकख्याति प्राप्त होती है। इस विवेकख्याति में ज्यों–ज्यों अभ्यास बढ़ता है त्यों–त्यों चित्त निर्मल होता है और आत्मशुद्धि उत्तमोत्तम प्रतीत होने लगती है। चित्त की अत्यन्त निर्मलता में यह विवेकख्याति भी चित्त की ही एक सात्त्विक वृत्ति और गुणों का परिणाम प्रतीत होने लगता है तब इस विवेकख्याति से भी, जो कि एक वृत्ति ही है और गुणों का ही कार्य है, वैराग्य हो जाना परवैराग्य कहलाता है।[गअपपप] यह परवैराग्य ही ज्ञान की पराकाष्ठा है।

इस प्रकार अभ्यास और वैराग्य के द्वारा उत्तम कोटि के साधक कैवल्य की प्राप्ति करते हैं। अभ्यास और वैराग्य दोनों का साथ–साथ आचरण किया जाता है। जिस प्रकार पक्षी का उड़ना दोनों ही पक्षों के अधीन है उसी प्रकार अभ्यास और वैराग्य दोनों ही चित्तवृत्ति निरोध के लिए आवश्यक है। चित्त की बहिर्मुखप्रवाहशीलता वैराग्य द्वारा निवृत्त होती है और अभ्यास बल से आत्मोन्मुख आन्तरिक प्रवाहशीलता स्थिर हो जाती है और कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है।

सन्दर्भ–सूची

[i] पातञ्जलयोगप्रदीप पृष्ठ 152

[ii] तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः। –योगसूत्र 2/1

[iii] तपोद्वन्द्वसहनम्।– व्यासभाष्य योगसूत्र 2/32

[iv] अनादिकर्मक्लेशवासनाचित्रा प्रत्युपस्थित विषयजाला चाशुद्धिर्नान्तेरण तपः संभेदभापद्यत इति तपस उपासानम्। –व्यासभाष्य योगसूत्र 2/1

[v] स्वाध्यायः प्रणवादिपवित्राणां जपो मोक्षशास्त्राध्ययनं वा। –व्यासभाष्य योगसूत्र 2/1

[vi] ईश्वरप्रणिधानं सर्वक्रियाणां तस्मिपरमगुरौ फलनिरपेक्षतया समर्पणम्। –भोजवृत्ति योगसूत्र 2/1

[vii] यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि। –योगसूत्र 2/29

[viii] अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहायमाः। – योगसूत्र 2/30

[ix] शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। –योगसूत्र–2/32

[x] स्थिरसुखमासनम्। –योगसूत्र 2/46

[xi] तस्मिन्सतिश्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः। – योगसूत्र 2/49

[xii] स्वविषयासंप्रयोगेचित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः। – योगसूत्र 2/54

[xiii] देशबन्धश्चित्तस्य धारणा। – योगसूत्र 3/1

[xiv] तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्। – योगसूत्र 3/2

[xv] तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधि। – योगसूत्र 3/13

[xvi] तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः। – योगसूत्र 1/13

[xvii] दृष्टाचक्षुविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्। – योगसूत्र 1/15

[xviii] तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्णम्। –योगसूत्र 1/16